मुंशी प्रेमचन्द के कथा साहित्य में किसान–जमींदार संघर्ष : 'प्रेमाश्रम'

पंकज यादव,

शोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ0प्र0)

डॉ0 प्रमोद कुमार सिंह,

एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ0प्र0)

शोध सारांश

'प्रेमाश्रम' जमींदारी शोषण का श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें प्रेमचंद के आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के दर्शन काफी मुखर रूप में हुए हैं। इस संबंध में चीनी विद्वान अपने लेख 'प्रेमाश्रम और प्रेमचंद का यथार्थवाद' में लिखा है, धरती की ओर झांकता दर्पण, भारतीय जमीन में जमी जड़ों वाली जनोद्धार की भावना और प्रतिमा, सृजन की चीरफाड़ की तकनीक, ये तीनों प्रेमचंद के यथार्थवाद की मुख्य विषेषताएँ हैं। ये तीन विलक्षणताएँ उनके सुप्रसिद्ध आरंभकालीन उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में बहुत स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई हैं। अतः 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने उस यथार्थवाद को रेखांकित किया है जिसका संबंध जन–सामान्य के शोषण एवं उत्पीड़न से है।

'प्रेमाश्रम' का आधार है– किसान और जमींदार का संबंध। प्रेमचंद ने इसमें किसानों के जीवन की पूरी कथा न कहकर सिर्फ दूसरे वर्ग के लोगों के साथ उनके संबंध स्थापित किए हैं। वास्तव में इस उपन्यास के केंद्र में किसान के महत्व को प्रतिष्ठित किया गया है। 'प्रेमाश्रम' में एक ओर ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर, गायत्री, कमलानंद आदि जमींदार वर्ग के पात्र हैं, उनकी समस्याएं हैं, उनकी कथा है, इसमें गाँवों का कृषक समाज, उसकी समस्याएं, शोषण–यंत्र की विविध गतिविधि आदि को प्रेमचंद ने यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। अतः 'प्रेमाश्रम' लिखने के पीछे प्रेमचंद का एक मात्र उद्देश्य था तत्कालीन समाज के दबे–कुचले मजदूर–किसानों की समस्याओं को उद्घाटित करके उनका समाधान तलाशना। उपन्यास में जमींदार, हाकिम, कारिंदा, चपरासी, पुलिस, वकील एवं डॉक्टर आदि सभी ने किसान का खुलकर, शोषण किया है। अतः एक जागरूक और यथार्थवादी रचनाकार होने के नाते प्रेमचंद ने कारिंदा, मुख्तार और चपरासी आदि सभी को किसानों के शोषण के लिए जिम्मेदार ठहराया है।

Keywords: *महाजनी शोषण की विशद गाथा 'गोदान', किसान की राजनीतिक स्थिति, संघर्ष गाथा, निष्कर्ष*

प्रेमचंद ने गाँवों में रहकर यह अनुभव किया कि वर्तमान सभ्यता के संपर्क में आया नया जमींदार पुरानी सभ्यता के जमींदार की तुलना में ज्यादा खतरनाक है। 'प्रेमाश्रम' में लाला जटाशंकर और उनका छोटा भाई प्रभाशंकर दोनों पुराने जमींदार थे। जटाशंकर की मृत्यु हो जाती है। प्रेमशंकर और ज्ञानशंकर, जटाशंकर के पुत्र थे। प्रेमशंकर अमेरिका चला जाता है और ज्ञानशंकर बी0ए0 पास करके जमींदारी के पुश्तैनी धंधे में लग जाता है। अब लखनपुर गाँव का मालिक ज्ञानशंकर है जो कि उपन्यास का मुख्य पात्र भी है। पुराना जमींदार नए जमींदार से अच्छा होता है क्योंकि शोषण के बावजूद पुराने जमींदार में किसानों के लिए आत्मीयता की भावना भी होती है। वह किसान का शोषण तो करता है, लेकिन उन्हें तबाह नहीं करता। राय साहब कमलानंद तथा

उनकी विधवा बेटी गायत्री, ज्ञानशंकर की तुलना में बड़े जमींदार हैं।

किसानों का शोषण करने में ब्रिटिश नौकरशाही भी जमींदारों का पूर्ण सहयोग करती है। परंतु 'प्रेमाश्रम' का डिप्टी ज्वाला सिंह भले ही ज्ञानशंकर का सहपाठी रहा है, फिर भी वह आसामियों पर इजाफा लगान का जमींदार का दावा बेझिझक खारिज कर देता है। यहाँ डिप्टी ज्वाला सिंह अपनी न्यायप्रियता के कारण किसानों का पक्ष लेता है। इसीलिए उसका तबादला करवा दिया जाता है। ज्ञानशंकर किसानों का शोषण करने में अपने चचेरे भाई दारोगा दयाशंकर, डॉ0 प्रियनाथ, वकील इरफान अली आदि सभी की सहायता लेता है। ये सभी मिलकर किसानों को तबाही के कगार तक पहुँचाते हैं। मनोहर के हाथों कारिंदा गौस खां की हत्या होने के बाद गाँव वालों पर मुकदमा चलता है और बलराज व कादिर खां को कालापानी की सजा होती है।

बाकी अभियुक्तों को सात–सात साल की बामुशक्कत कैद। इसके बाद गाँव का हाल बहुतबुरा हो गया। खेतों में फसलें सूख गईं। लगान के लिए फैजुल्लाह लोगों पर रोजाना नए–नए अत्याचार करता था। इधर ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर के अथक प्रयासों एवं अपील के बाद अभियुक्त जेल से रिहा कर दिए जाते हैं। सभी गाँववासी मिलकर जुलूस निकालते हैं। बाद में मायाशंकर जमींदार बनने से पहले ही जमींदारी छोड़ देता है। सहकारिता में खेती होने लगती है। अब गाँव में रामराज है। गाँव का हर व्यक्ति शाति का जीवन जी रहा है। यहीं श्प्रेमाश्रमश की कथा का अंत हो जाता है।

महाजनी शोषण की विशद गाथा 'गोदान'

प्रेमचंद ने जमींदार, राजकर्मचारी एवं महाजन को महाजनी सभ्यता के मुख्य स्तंभ माना है। उन्होंने अपने साहित्य में जमींदार को अत्याचारी, राजकर्मचारी को रिश्वतखोर तथा महाजन को अन्यायी घोषित किया है और इन सभी की खूब धज्जियाँ उड़ाई हैं। जिस प्रकार 'प्रेमाश्रम' की मुख्य समस्या किसान–जमींदार का संघर्ष है, ठीक उसी प्रकार गोदान का आधार भी किसान महाजन की समस्या है। अतः गोदान को महाजनी शोषण की विशद गाथा कहा गया है।

'गोदान' में प्रेमचंद ने भारतीय कृषक की लगभग सभी समस्याओं का सजीव चित्रण किया है। पारिवारिक विघटन, जमींदारों द्वारा किसानों का असहनीय शोषण, साहूकारों द्वारा सूद पर कर्ज देना, कृषि भूमि की समस्या, अनुचित लगाव एवं बेगार का दबाव, आपसी लड़ाई–झगड़ा एवं मारपीट, ईर्ष्या–जलन तथा द्वेष–कपट आदि को इसमें अति यथार्थ रूप में वर्णित किया गया है। त्रिलोकी नाथ खन्ना के अनुसार, 'व्यक्ति के नैतिक ह्रास का चित्र है– 'गोदान'। सामाजिक अत्याचार की कहानी है 'गोदान'। रूढ़ियों व अंधविश्वासों की गाथा है– 'गोदान'। मूल्यों की मूल्यहीनता का दस्तावेज है– 'गोदान'। आर्थिक शोषण का मुखरित निबंध है– 'गोदान'।[1] अतः 'गोदान' में मुख्य रूप से उपन्यास के नायक होरी की आर्थिक विपन्नता तथा उसके दैनिक व आजीवन कठोर संघर्ष की महागाथा है। गाँव में व्याप्त आर्थिक–सामाजिक मान्यताओं अंधविश्वासों एवं कुप्रथाओं के खुले चित्रण ने कहानी में रोचकता उत्पन्न कर दी है। गाँव के गरीब किसान–मजदूर महाजनों के मानवीय एवं असहनीय शोषण से व्याकुल हैं।

'गोदान' में अवध प्रांत के दो गाँवों– सेमरी व बेलारी के किसान जीवन की गाथा है। उपन्यास का मुख्य पात्र होरी बेलारी में रहता है, जो कि एक गरीब किसान है। बेलारी के पास ही दूसरा गाँव है सेमरी, जिसमें रायसाहब अमरपाल सिंह रहते हैं। यही रायसाहब सेमरी व बेलारी दोनों गाँवों के जमींदार भी हैं। राय साहब के

संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा की मान्यता इस प्रकार है, ‘समाज के जाल में मोटी–मोटी गांठों से बंधे छोटे और बड़े जमींदार हैं जिनका निर्धन वर्गों से निकट का संबंध है और जो नई महाजनी सभ्यता के संपर्क में आकर एक नया रूप धारण कर चुके हैं। गोदान के रायसाहब इस वर्ग के सुंदर प्रतिनिधि हैं।[2] रायसाहब नई महाजनी सभ्यता के जमींदार हैं। अपने असामियों का शोषण करने में वह कुशल हैं। इसीलिए किसानों का शोषण होने के बावजूद भी रायसाहब पर उनकी श्रद्धा एवं विश्वास बना हुआ है।

होरी अपने कठिन परिश्रम द्वारा जीविकोपार्जन करते हुए अपने परिवार की मान–मर्यादा एवं प्रतिष्ठा बनाए रखता है। अपनी गृहस्थी की गाड़ी वह किसी न किसी तरह खींच रहा है। उसके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा थी– एक गाय खरीदने की। हर एक गृहस्थ की भांति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक सूद से चौन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएं उसके नन्हे से हृदय में कैसे समातीं।[3] अतः होरी चाहता था कि उसके द्वार पर भी गाय बंधे ताकि समाज में उसकी मान–मर्यादा बढ़े। इसीलिए वह अपने मन में गाय लाने की उम्मीद लिए जी रहा था। होरी जीवनभर संघर्षरत रहता है, परंतु फिर भी वह जिंदगी की उन सुख–सुविधाओं से वंचित रहता है जो एक आम आदमी के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। इतने पर भी जमींदार एवं महाजन हैं जो हर तरह से होरी का शोषण करते हैं।

डॉ0 रामविलास शर्मा ने किसान के शोषण के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा है, ‘किसान के जीवन के अनेक पहलू हैं। सामाजिक आचार–विचारों के निर्जीव बंधनों से वह बुरी तरह जकड़ा हुआ है। उसकी धार्मिकता और उसका अंधविश्वास भी उसके शोषण के कारण हैं। उसके शोषकों में जमींदारों के सिवा। महाजन हैं जिनकी शोषण–क्रिया विश्वइतिहास में अद्वितीय है।[4] अर्थात् जमींदार महाजनों के अलावा अपने शोषण का जिम्मेदार स्वयं किसान भी है। कुछ तो उसके सामने मजबूरियां हैं और कुछ वह सामाजिक रूढ़ियों का शिकार भी है।

होरी का शोषण जमींदार की अपेक्षा महाजन अधिक करते हैं। वैसे भी गाँव में मात्र एक जमींदार रायसाहब हैं, परंतु महाजन तीन हैं। रात–दिन परिश्रम करने पर भी होरी की आर्थिक स्थिति नहीं सुधर पाई। बल्कि उसकी सारी फसल खलिहान में ही लूट जाती है। होरी स्वयं भोला से कहता है, ‘अनाज तो सब–का–सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पांच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों रात ढोकर छिपा लिया था, नहीं तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है, मगर महाजन तीन–तीन हैं, सहुआइन अलग और मंगरू अलग और दातादीन पंडित अलग। किसी का ब्याज भी, पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गए। सहुआइन से फिर रुपए उधार लिए तो काम चला।[5]

होरी की आर्थिक स्थिति बहुत नाजुक थी तभी तो वह तीन–तीन महाजनों से कर्ज लेने को विवश था। कर्ज के रूप में सारी फसल देने के बाद भी होरी अभी कर्जदार था, इस फसल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रूपए खूद के बढ़ते जाते थे। मंगरूसाह से आज पांच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपए लिए थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रुपए ज्यों–के–त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रुपए लेकर आलू बोए थे। आलू तो चोर खोद ले गए, और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाँव में नोन, तेल, तमाखू की दुकान रखे हुए थी। बटवारे के समय उससे चालीस रुपए लेकर

भाईयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपए हो गए थेय क्योंकि आने रुपए का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रुपए बड़े अच्छे समय पर मिल गए। शगुन की समस्या हल हो जाएगी, लेकिन कौन जाने।[6] अतः ऐसी ही आर्थिक समस्याओं से जूझता हुआ होरी अपने जीवन की विषम परिस्थितियों का सामना कर रहा था।

होरी के जीवन में एक साथ ऐसी कई घटनाएं घटित हुई जिन्होंने उसे कमजोर बना दिया। भोला की विधवा बेटी झुनियां को अपनी बहू (बेटे गोबर की पत्नी) स्वीकार करने पर बिरादरी को जुर्माना देना, अपनी बेटियों—रूपा व सोना के विवाह के लिए कर्ज लेना, भाई हीरा द्वारा गाय को जहर देने पर हीरा के घर की तलाशी लेने गाँव में पुलिस का आना और कुल की प्रतिष्ठा बचाने के बदले में पुलिस को रिश्वत देने के लिए होरी का धन उधार लेने को तैयार होना, इसके लिए पत्नी धनिया द्वारा विरोध करना आदि सभी बातों ने होरी को अत्यंत व्याकुल कर दिया। कितनी बड़ी विडंबना है कि 'सुतली' बनाकर उसने जो बीस आने पैसे इकट्ठे किए थे, लोग उससे उसका गोदान करा देते हैं। उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद परलोक सुधारने के लिए यह समाज गोदान करवाता है, जिसे जीवन में कभी भर पेट खाना नसीब नहीं हुआ। होरी इस व्यवस्था की बलि चढ़ जाता है।[7] अर्थात् होरी के अंत के साथ—साथ 'गोदान' की समाप्ति भी बहुत त्रासदीपूर्ण मार्मिकता के साथ होती है। अत रू जीवन भर अपना पेट काटकर दूसरों की भूख मिटाने वाला तथा स्वयं दुःखी रहकर दूसरों के लिए सुख जुटाने वाला कृषक हारकर भी कभी पराजित नहीं होता। होरी भी अपने जीवन संग्राम में हारा नहीं विजयी हुआ है।

'मैला आंचल' की महत्ता के संबंध में राकेश एम0ए0 का मानना उचित है,'' ''मैला आंचल'' भारतीय गाँवों में स्वतंत्रता के बाद घटित हो रहे परिवर्तनों का एक दस्तावेज है। स्वतंत्रता के पूर्व के भारतीय ग्राम्य जीवन का सृजनात्मक प्राथमिक चित्रण करने के लिए प्रेमचंद के 'गोदान' की जो महता थी ठीक वैसी ही महत्ता स्वतंत्र भारत में 'मैला आंचल' की है।[8] अर्थात् 'मैला आंचल' एक ऐसा आंचलिक उपन्यास है जिसमें मूलतः आजादी के बाद के कुछ वर्षों में हमारे सामाजिक परिवर्तन एवं राजनीतिक जीवन संदर्भो को अनिवार्य अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। मेरीगंज गाँव की समाजशास्त्रीय स्थिति को दर्शाते हुए डॉ0 वैद्यनाथ ठाकुर ने लिखा है, गाँव की मुख्य पैदावार है धान, पाट और खेसारी। रबी की फसल भी कभी—कभी अच्छी हो जाती है। यह हुई पैदावार और गाँव की उपजातीय स्थिति। मेरीगंज की इस कथा क्षेत्र में वहां के सभी वर्गों एवं जातियों के लोगों का समावेश है।

'मैला आंचल' के किसान भी गोदान के किसानों की तरह जमींदार तथा महाजन के शोषण का शिकार हैं। दो महीने की कटनी, एक महीना मड़नी, फिर साल—भर की खटनी। दवनी मड़नी करके जमा करो, साल—भर के खाए हुए कर्ज का हिसाब करके चुकाओ। सफाई करनी है तो बैल—गाय भरना रखो या हलवाहा—चरवाहा दो। पांव के अंगूठे से लेकर जांघ तक मोटे—मोटे जोंक धुंघरू की तरह लटक जाते थे।[9] अर्थात् भूख, निर्धनता बीमारी एवं अंधविश्वासों से पीड़ित इन गरीब मजदूर किसानों पर धनी वर्ग यूँ ही अत्याचार करता चला आया है। इस मेरीगंज गाँव में रोगों की छानबीन करने आए डॉ0 प्रशांत इन लोगों की इस दयनीय स्थिति को देखकर सिहर उठता है और यहां के लोगों को इस नरक से निकालने का भरसक प्रयास करता है।

जमीनी संघर्ष में संथालों के साथ मारपीट होती है और उन्हें हराकर नए—पुराने तहसीलदार प्रमाणित करते हैं कि जमीन पर वास्तविक अधिकार मालिक का होता है न कि जमीन को जोतने, बोने एवं काटने वाले का, अतः असल में

जाति एवं जमीन का संघर्ष ही प्रस्तुत उपन्यास का सामाजिक संघर्ष है। एक तरफ कालीचरण और वासुदेव गाँव के छोटे किसानों एवं मजदूरों में जागरूकता लाने का सफल प्रयास करते हैं तो दूसरी और डॉक्टर प्रशांत भी इन गरीबों को अपने वास्तविक हक के लिए सचेत करते हुए उन्हें बताते हैं, श्तुम लोग ही जमीन के असल मालिक हो। कानून है, जिसने तीन साल तक जमीन को जोता–बोया है जमीन उसी की होगी।[10] अतः मुख्य गवाह के रूप में कालीचरण का उपयोग करके इस जमीनी संघर्ष में तहसीलदार संथालों को हरा देते हैं। अब गाँव के किसानों की बारी आएगी और तुमको तथा बासुदेव को ही उन्होंने अपना पहला हथियार बनाकर इस्तेमाल किया है।[11] अर्थात् पूंजीपति शोषक वर्ग अपनी उद्देश्यपूर्ति के लिए निम्नवर्गीय निर्धन मजदूर किसानों के समुदाय को आपस में लड़वाकर अथवा अन्य दूसरे तरीकों से फूट डालकर पहले इन्हें विभाजित करता है। तत्पश्चात् इन्हें एक–दूसरे के प्रति हथियार के रूप में इस्तेमाल करता है।

बाबा नागार्जुन के अधिकतर उपन्यासों में मिथिला के ग्रामीण अंचल की कथा है, परंतु इन्हीं कथाओं के आधार पर आपने भारत देश का सजीव चित्रण किया है। 'नागार्जुन गाँवों की अस्तित्व चिंता से ग्रस्त या पस्त नहीं हैं। वे रूढ़िवादी, पुरातनवादी, दकियानूस सामाजिकता के विरोधी शिवि के लेखक हैं जिनके गाँव राजनीतिक और सामाजिक नवजागरण से संपन्न हैं। इसलिए वे स्त्रियों, शूद्रों, मजदूरों, छोटे किसानों की एक आत्मसमर्थ दुनियां रचने का उपक्रम करते दिखाई देते हैं।[12] अर्थात् नागार्जुन भारतीय समाज के कथाकार हैं, केवल और केवल ग्राम–कथाकार नहीं। अपने समय के जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने वाले एक सचेत कलाकार के रूप में नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नए भारत की स्वातंत्र्योत्तर अपेक्षाओं–अभिलाषाओं को उद्घाटित किया है।

किसान की राजनीतिक स्थिति

प्रेमचंद साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्रेमचंद के यहां व्यवस्था का ऐसा भीषण आतंक फैला हुआ है जो अटूट एवं अमानवीय है। इस आतंक ने उसके मजदूर एवं किसान पात्रों की कमर तोड़कर रख दी है। अर्थात् सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से नागार्जुन के पात्र जागरुक हैं। बलचनमा, मंगल–माधुरी, मोहन मांझी, जीवननाथ एवं जैकिसुन आदि ऐसे ही पात्र हैं।

अर्थात् इसी बोध के फलस्वरूप लेखक ने इस उपन्यास में शोषण, अनाचार व अनैतिकता के अमानवीय व्यवहार से पीड़ित तथा एक लंबे अरसे से खामोश बैठे, सामंती अत्याचारों और जर्जर रूढ़ियों के शिकार मजदूर किसानों को जागरूक किया है ताकि वे अपने अधिकारों को समझें और एकजुट होकर उन्हें छीन सकें। 'आस्था और सौंदर्य' नामक अपनी पुस्तक में 'बलचनमा' के बारे में डॉ0 राम विलास शर्मा ने भी अपना तर्क दिया है, 'मिथिला' के पिछड़े हुए सामंती समाज, उसकी घुटन, जनता का संघर्ष और उसकी नई चेतना–इस सबका चित्रण नागार्जुन ने 'बलचनमा' तथा अन्य उपन्यासों में किया। 'बलचनमा' में नागार्जुन ने एक नई शैली का प्रयोग किया। कथानायक अपनी मैथिल–प्रभावित खड़ी बोली में ही सारी कथा कहता है। इस नवीनता के साथ 'बलचनमा' का चरित्र खूब उभरकर सामने आता है। भाषा की असाधारणता चित्रण को कमजोर नहीं करती।[13] बलचनमा एक निम्नवर्गीय किसान परिवार का व्यक्ति है। वह अपने जीवन तथा उससे संबंधित सामाजिक जीवन की ऊँच–नीच, दुःख–दर्द, संघर्ष एवं घात–प्रतिघात, मजबूरी–विवसता तथा संगति–विसंगतियों में जीता है और उसकी कहानी अपनी जुबानी सुनाता है।

उपन्यास का केंद्रीय पात्र बलचनमा है जो कि एक निम्नवर्गी किसान परिवार का सदस्य है। जिस शोषण की चक्की में सदियों से असंख्य दलित, निर्धन, शोषित, मजदूर एवं किसान पिसते चले आ रहे हैं उसी शोषण का शिकार बलचनमा भी होता है। विद्रोह के बावजूद भी उसकी जमीन को जमींदार उससे छीन लेता है। 'बलचनमा' केवल इसलिए उल्लेखनीय नहीं है कि उसमें कृषक मजदूरों के अत्याचार और शोषण की सही तस्वीर है, वरन् इसलिए भी कि उसमें नागार्जुन ने जमींदारों से किसानों के संघर्ष की शुरूआत की कहानी लिखी है।''[14] अतः मिथिला के किसानों की अभाव और शोषण पूर्ण जिंदगी के तीखे अनुभव की एक गहरी प्रेरणा ने ही नागार्जुन को 'बलचनमा' लिखने के लिए प्रेरित किया।

राही मासूम रजा स्वातंत्र्योत्तर युग के सुप्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासकार हैं। आपने अपने उपन्यासों में राष्ट्र और राष्ट्र के नागरिकों की अंतः एवं बाह्य मनःस्थितियों को भली–भांति दर्शाया है। इस संबंध में चंद्रदेव यादव ने अपने आलेख 'परदे के पीछे की दुनिया' में लिखा है, 'स्वातंर्त्योत्तर' युग के हिन्दी उपन्यासकारों में राही मासूम रजा एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यास उनके युग की सामाजिक समस्याओं और सामाजिक ह्रास–विकास के साक्षी हैं। अजनबियत, अकेलापन और अस्तित्त्वहीनता स्वातंर्त्योत्तर युग की परिस्थितियों की देन है।[15] अर्थात् राही जी द्वारा लिखित लगभग समस्त उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज में होने वाली उठा–पटक को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं।

'राही का पूरा लेखन सांप्रदायिकता के विरुद्ध एक सतत् संघर्ष है। उनका पूरा लेखन हिंदुस्तानी सभ्यता–संस्कृति और उसकी साझी विरासत का प्रबल पक्षधर है। राही हमेशा उन शक्तियों और प्रवृत्तियों का विरोध करते रहे हैं जो भारतीय जनता की एकता को धर्म, संप्रदाय, क्षेत्रीयता, जातिवाद और भाषा के आधार पर अपने राजनैतिक और आर्थिक स्वार्थों के लिए बांट रहे हैं। इसके साथ ही उन्होंने भविष्य के परिवर्तनों और सामाजिक संरचना की धड़कनों को स्वर और शब्द दिए हैं।[16] अतः राही ने निडर होकर अपनी लेखनी चलाई। आपने वही लिखा जो देखा अर्थात् अपने समय के सच को यथार्थ रूप में लिखना ही राही की विशिष्ट पहचान रही है।

'राही हिंदी में प्रेमचंद', यशपाल तथा मुक्तिबोध की परंपरा में हैं जो बड़े रचनाकार के साथ चितंक भी हैं। देश, समाज, उसकी अखंडता, एकता और साझी विरासत की रक्षा और विकसित करना तथा विघटनकारी और सांप्रदायिक शक्तियों के पीछे कौन–सी शक्तियाँ काम कर रही हैं उनका उद्घाटन करना और बेबाकी से उनकी ओर इंगित करना राही के रचनाकर्म का प्रमुख उद्देश्य रहा है। हिंदी की जनवादी परंपरा में राही एक प्रमुख स्तंभ हैं। जिनके कर्म कविता, उपन्यास, व्यंग्य लेख और साहित्यिक लेख और फिल्मी लेखन तक फैले हुए हैं।[17] अर्थात् राही का रचना संसार काफी विशाल है। आपने अपनी लेखनी के माध्यम से हिन्दी साहित्य सेवा के साथ–साथ देश सेवा करके एक सच्चा हिंदुस्तानी होने का फर्ज अदा किया है।

'आधा गाँव' की विषय–वस्तु के संबंध में प्रो0 गोपाल राय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास में एक स्थान पर लिखा हैं,'' 'आधा गाँव' उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के गाँवों में रहने वाले मुसलमान जमींदारों और मध्य वर्गीय किसानों की जिंदगी के एक हादसे का चित्रण करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास में राही ने गंगौली के मुसलमानों की स्वाधीनतापूर्व खुशहाल जिदंगी से आरंभ कर आजादी के बाद उनकी दयनीय स्थिति, अपने ही वतन में बेगाना बन जाने, सामान्य जीवन धारा से कट जाने और आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो जाने का मार्मिक चित्रण किया है।[18]

राही मासूम रजा ने इस उपन्यास में सबसे पहले वर्ग भेद की समस्या को दर्शाया है। जमींदार–वर्ग के हाथों मजदूर किसान वर्ग का शोषण किया जाता है और उसे दबाकर भी रखना चाहता है। जैसा कि स्वयं लेखक ने उपन्यास में लिखा है, 'जब वह सलीमपुर पहुँचे तो अशरफुल्लाह खां किसी आसामी को गालियां दे रहे थे। फुन्नन मियां को देखते ही उन्होंने गालियां देना बंद कर दिया और बोले, 'साले' अगर परसों तक लगान और कर्ज मय सूद के न आया तो ढोर–डांगर, सब नीलाम करवा दूँगा। अपने इन लाट साहब को भी ले जा और इन्हें बतला कि जमींदारों से कैसे बातचीत की जाती है।[19]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेमचंद से लेकर राही मासूम रजा तक जिन उपन्यासकारों ने किसान जीवन को अपनी लेखनी साहित्य–साधना का आधार बनाकर उपन्यास लिखे उन्होंने किसान जीवन के लगभग हर हिस्से पर गहनतम विचार–विमर्श किया है। किसान जीवन के विभिन्न संघर्षों को आपने पैनी नजर से उद्घाटित किया है। मुंशी प्रेमचंद ने एक ओर तो 'प्रेमाश्रम' में किसानों और जमींदारों के संघर्ष की गाथा कही है तथा दूसरी तरफ 'गोदान' के माध्यम से महाजनों द्वारा किसानों पर किए गए उस शोषण की कथा कही है जिसके चलते होरी जैसा परिश्रमी किसान कर्ज चुकाते–चुकाते मजदूर बन जाता है। इधर उपन्यासकार रेणु ने 'मैला आंचल' के माध्यम से भारतीय ग्रामीण संस्कृति का कुशल एवं सूक्ष्म चित्रण किया है जो कि गाँवों में रहने वाले मजदूर–किसानों से संबंधित है।

प्रेमचन्द ने समय की नब्ज को पहचाना था, किसानों के जीवन से जुड़ी समस्याओं और किसानों पर आरोपित राजनीतिक समाज को भली प्रकार परखा था इसलिये किसानों को उन्होंने अपने साहित्य का नायक बनाया। उन पर होने वाले अन्याय एवं अत्याचार को वर्णित किया। उन्होंने पूर्ण रूप से मानवतावादी धरातल पर स्थित होकर भारत की साधारण जनता के धैर्य, सादगी, साहस, मनोबल को प्रकट किया है। किसानों की निर्धनता, उनपर थोपा गया ऋण, किसानों के अपने अधिकारों को पहचानने एवं आन्दोलन की गुहार लगाने आदि समस्याएँ किसान–जमींदार संघर्ष को आधार बनाकर अत्यन्त सफलता के साथ उनके उपन्यासों में प्रस्तुत हुई हैं। जमींदारों के अतिरिक्त सरकारी कर्मचारी और पुलिस भी किसानों पर अपना शिकंजा कसने में पीछे नहीं थे। प्रेमचन्द पहले ऐसे साहित्यकार थे जो राष्ट्रव्यापी जन चेतना और सुधारवादी अवधारणा के ओत–प्रोत शोषित एवं निर्धन वर्ग की वास्तविक स्थिति जनसम्मुख प्रकट कर रहे थे। उनके उपन्यासों में किसानों के जीवन के अन्तर्विरोध का अत्यन्त ही सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

सन्दर्भ

1. संपा0, मण्डल–डॉ0 भीष्म साहनी, डॉ0. रामजी मिश्र/भगवती प्रसाद निदारिया, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, भाग–1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976, पृ0 सं0 32
2. डॉ0 रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमाल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981, पृ0 सं0 141
3. वही, पृ0 सं0 8
4. प्रेमचन्द, पृ0 सं0 79
5. गोदान, पृ0 सं0 21
6. वही, पृ0 सं0 32
7. भारतीय समाज की समस्याएँ और प्रेमचन्द, पृ0 सं0 94

8. राकेश एम0 ए0, फणीश्वरनाथ रेणु और मैला आंचल, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1986, पृ0 सं0 4
9. वही, पृ0 सं0 150
10. वही, पृ0 सं0 215
11. वही, पृ0 सं0 239
12. विजय बहादुर सिंह, नागार्जुन का रचना–संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982, पृ0 सं0 135
13. डॉ0 रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, पृ0 सं0 97
14. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : भाग 1, डॉ0 गोपाल राय का लेख 'बलचनामा' समीक्षा, पृ0 सं0 67
15. संपा0– प्रो0 कुंवरपाल सिंह, राही और उनका रचना–संसार, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 2004, पृ0 सं0 211
16. राही और उनका रचना–संसार, भूमिका, पृ0 सं0 7
17. वही, पृ0 सं0 32
18. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, पृ0 सं0 292
19. राही मासूस रजा, आधा गाँव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966, पृ0 सं0 147